उसका नाम आज है

पहली कक्षा के बारे में कुछ नोट्स

हिमांशु पण्ड्या

राजस्थान में नई पाठ्यपुस्तकें लागू हुई हैं। शोर है कि इनमें दक्षिणपंथी विचारधारा के अनुरूप लेखन के जरिए बालकों के मानस को प्रभावित करने का प्रयास किया गया है। पाठ्यपुस्तक निर्माताओं द्वारा यह दावा किया गया है और किताबों की भूमिका में भी लिखा है कि वे राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (रापारू) के निर्देशों के अनुसार ही बनाई गई हैं। यदि ऐसा है तो फिर दिक्कत क्या है? किताब में क्या जोड़ा-घटाया गया, इसको लेकर आरोप प्रत्यारोप जारी हैं, लेकिन क्या विचारधारा विशेष का हस्तक्षेप कुछ जोड़ने-घटाने तक ही सीमित होता है या किसी विचारधारा/दृष्टिकोण को पूरी किताब के निर्माण में तलाशा जा सकता है? किस उम्र से यह हस्तक्षेप लक्षित किया जा सकता है या यों कहें कि कोई मत किस उम्र के बच्चों को प्रभावित करने में रुचि ले सकता है? इस लेख में पहली कक्षा की हिन्दी की किताब का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है, हालांकि प्रकारान्तर से और कक्षाओं की किताबों का भी जिक्र है। इस चयन के दो कारण हैं। पहला, इतनी छोटी उम्र की किताब होने के कारण यह किताब प्रायः विमर्श-बहस से बाहर रहती है और दूसरा, मेरी राय में यह किताब बच्चे की जिंदगी में सबसे महत्वपूर्ण होती है क्योंकि भाषा-साहित्य और सर्जना से उसके औपचारिक रिश्ते की शुरुआत यहीं से होती है।

किताब के शीर्षक पर नजर डालें। एनसीईआरटी की किताब जो कुछ बरस राजस्थान में भी चली, उसका नाम था - 'रिमझिम'। इसके बाद दो वर्ष पूर्व आई किताब का नाम था 'रुनझुन'। इस बार की किताब का नाम तथ्यात्मक दृष्टि से एकदम दुरुस्त है 'हिंदी' (!)। अब पाठों की बात करें। 'रिमझिम' में कुल तेईस पाठ हैं जिनमें से पहले छह पाठ हैं - झूला, आम की कहानी, आम की टोकरी, पत्ते ही पत्ते, पकौड़ी, छुक-छुक गाड़ी। 'रुनझुन' में उन्नीस पाठ थे जिनमें से पहले छह थे - चक-चक चैया, रेल का खेल, तीन साथी, कल देखेंगे, दाल-बाटी-चूरमा, टिपिक पां फुर्र। अब वर्तमान पुस्तक की बात करें। इसके शीर्षक बड़े मजेदार हैं। अवश्य ही उनके रखे जाने का कोई वैज्ञानिक आधार होगा। शीर्षक हैं - घ र च ल, अ ब म न, ज ख आ ा, द त इ ि, क स ई ी, व ह ए े।

यदि इस लेख का पाठक वयस्क है तो उसे अपने बचपन में इसी तरह पढ़ाया गया अक्षर ज्ञान याद आएगा। पिछली शताब्दी में भाषा ज्ञान इसी तरह से होता था। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 ने इसे बदल दिया था और इसके पीछे ठोस भाषा वैज्ञानिक आधार था। पुराना दृष्टिकोण व्यवहारवादियों का था जो अक्षरों की मानक कोडिंग के बाद क्रमशः शब्दों और वाक्यों की तरफ बढ़ते थे। चॉम्स्की, पियाजे और व्योगोत्स्की जैसे चिंतकों ने इसे खारिज करते हुए कहा कि स्कूल में आया बच्चा 'खाली स्लेट' नहीं होता बल्कि वह अपने साथ सार्वभौम व्याकरण के रूप में बुनी हुई भाषा लेकर आता है। पियाजे का दृष्टिकोण यहां सर्वाधिक उल्लेखनीय है जिन्होंने संज्ञानात्मक ज्ञान के सिद्धांत के तहत यह कहा कि बच्चे को शब्द के भीतर अक्षर की अवस्थिति समझाकर उस अक्षर का ज्ञान ज्यादा बेहतर तरह से कराया जा सकता है

(जो दरअसल मौखिक ज्ञान के रूप में तो उसके पास पहले से होता ही है। देखें राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 का सहभागी आधार पत्र 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण', अध्याय 2)। यह बात सिर्फ भाषा की ही नहीं है बल्कि पूरी ज्ञान मीमांसा (epistemology) की है जिसमें बच्चा मूर्त उदाहरणों से अमूर्त सिद्धांत तक पहुंचता है। यह गणित या विज्ञान के बारे में भी उतना ही सही सिद्धांत है। यही कारण है कि 'रिमझिम' के पहले पाठ 'झूला' में 'झ ल ड' तीन अक्षर सिखाने का लक्ष्य निर्धारित था और 'रुनझुन' के पाठ 'चक चक चैया' में ट और र। (इसलिए यहां वर्णमाला क्रमानुसार नहीं है बल्कि पाठ में प्रयुक्त अक्षरों के मुताबिक है) नई किताब 'हिन्दी' शब्द, वाक्य या कथा संरचना से शब्दों तक नहीं पहुंचती और पुराना ठस, उबाऊ तरीका काम में लेते हुए - फलां चिन्ह का अर्थ फलां अक्षर होता है- वाली पुरानी डिकोडिंग पद्धति की ओर लौट जाती है। चलिए ठीक है, पर फिर पुरानी पद्धति को ही ठीक से अंगीकार करते हुए क्रमशः क ख ग घ क्यों न चला गया? ऊपर दिए गए क्रम की क्या तार्किकता है, यह चूं चूं का मुरब्बा क्यों है, यह समझ से परे है। ऐसा नहीं कि इस किताब में कविता, कहानियां नहीं हैं। हैं, पर वे सभी सहायक पठन सामग्री हैं, न तो उन पर सवाल हैं और न अंक विभाजन में उनका हिस्सा है। अब शिक्षक से लेकर विद्यार्थी तक सबके सामने स्पष्ट है कि पहली कक्षा की किताब सिर्फ वर्णमाला सिखाने के लिए है, भाषा की जीवन्तता से उसका कोई लेना देना नहीं है। यह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सबसे मुख्य सिद्धांत 'रटंत से मुक्ति' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, 1.4, मार्गदर्शक सिद्धांत, पृ. 5) का खात्मा है।

चित्र-1

घर घ

पहले पाठ से शुरू करें। 'घर अपना है कितना सुन्दर/देखो उसको बाहर अन्दर'। इसके साथ दिए चित्र पर गौर करें। (देखें, चित्र-1; हिन्दी-1, पृ. 15) यह न किसी शैली की पेंटिंग है, न फोटो है, यह कम्प्यूटर ग्राफिक है। पूरी किताब में कम्प्यूटर ग्राफिक्स की भरमार है और वे सारे नीरस और मशीनी हैं जिनसे किसी तरह का कोई जुड़ाव संभव नहीं है। कुछ उदाहरण हैं- बतख, जग, दरवाजा, सड़क, ऊन, ढपली, झरना और सर्वाधिक हास्यास्पद है भवन। (देखें, चित्र-2; हिन्दी-1, पृ. 64)

दूसरे सबक के माध्यम से कुछ विस्तृत बातें की जा सकती हैं। र - 'रथ पर देखो हुए सवार/चले सैर को राजकुमार'।। (हिन्दी-1, पृ. 15) आज तो राजकुमार नहीं होते, बेशक वे एक ऐतिहासिक सच्चाई हैं लेकिन उन्हें वर्तमान काल में प्रस्तुत करना उस राज्य में स्वाभाविक ही है जहां जनता के चुने प्रतिनिधि अपने को 'महाराज/महारानी' कहलवाना पसंद करते हैं। मैं यहां एक साथ कुछ ऐसे उदाहरण रख रहा हूं जिन्हें देखकर आप समझ सकते हैं कि वर्णमाला ज्ञान के नाम पर दरअसल कौनसा आदर्श समाज बच्चों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। 1. य - यज्ञ ऋषि जी करते रहते/सदा भले की बातें करते।। (हिन्दी-1, पृ. 50), 2. ध - धनुष बाण से शोभा पाते/शूरवीर वो ही कहलाते।। (हिन्दी-1, पृ. 54), 3. औरत ममता की मूरत है/भोली भाली सूरत है।। (हिन्दी-1, पृ. 68), 4. ऋ - ऋषि हमेशा ज्ञान बताते/सच की राह पर कदम बढाते।। (हिन्दी-1, पृ. 80), 5. क्ष - क्षत्रिय युद्ध में जाते हैं/दुश्मन को मार भगाते हैं।। (हिन्दी-1, पृ. 80), 6. त्र - त्रिशूल होता बड़ा भयंकर/धारण करते हैं शिव शंकर।। (हिन्दी-1, पृ. 80), 7. ज्ञ - ज्ञानी देते सबको ज्ञान/इनका करते सब सम्मान।। (हिन्दी-1, पृ. 80) इनके साथ संलग्न चित्रों में से दो अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं। औरत और ज्ञानी (चित्र 3 व 4) - इन दोनों की प्रस्तुत छवि को भी देखें। औरत के नाम पर साड़ी का पल्लू सर पर

चित्र-2

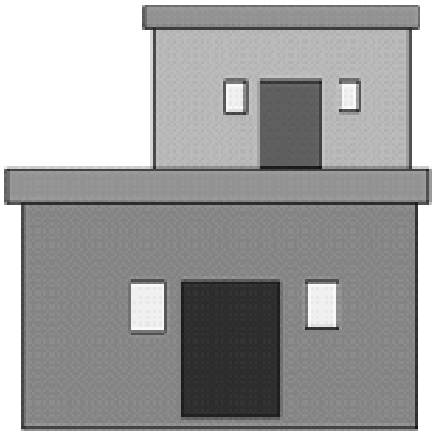

भवन भ

चित्र-3

औरत औ

लिए, बिंदी लगाए, गौरवर्ण स्त्री की छवि उकेरी गई है, उसे 'ममता की मूरत' पहले ही बता दिया गया है और 'भोली भाली सूरत' को उसकी अंतर्निहित विशेषता के रूप में रेखांकित कर दिया गया है। फेसबुक पर इस फोटो को लगाकर टिप्पणियां आमंत्रित की गईं तब अनेक पाठकों ने इस पर प्रतिक्रियाएं दीं, मैं इनमें से एक प्रतिक्रिया को प्रतिनिधि मानकर यहां रखता हूं। अंजलि काजल लिखती हैं, 'औरत अब ममता की मूरत से उभरना चाहती है, अपने साथ जुड़ी झूठी मूरतों को तोड़ना चाहती है। एक अदद इंसान को मिलने वाला सम्मान और स्वतंत्रता चाहती है। ममता की मूरतें देखकर बड़ी हुई हमारी पीढ़ी ने उस पीढ़ी को बहुत सहते हुए देखा है, अब नई पीढ़ी को नए अर्थ देने दीजिए। केवल ममता की मूरत बनके नहीं जीना है उसे।' यह आज की स्त्री की आवाज है। जैसाकि स्त्रीवादी चिंतक कविता कृष्णन ने लिखा कि 'औरत को अधिकार और आजादी से जोड़ने के बजाय ममता और भोला/भोलापन से जोड़ना गलत' है। शिक्षाशास्त्री रविकांत के मुताबिक यह मर्दवादी समाज को मुफीद होने वाली खासियतें हैं जो स्त्री पर चस्पा की जा रही हैं। दरअसल औरत को 'ममता की मूरत' (कोमल) और पुरुष को शौर्य का धनी बताना 'जेंडर स्टीरियोटाइपिंग' का सबसे मानक उदाहरण है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के सहभागी आधार पत्र 'जेंडर इश्यूज इन एजुकेशन' में 'जेंडर एंड मैस्कुलैनिटी' (2.1, पृ. 23-26) में विस्तार से चर्चा करते हुए पाठ्यपुस्तक निर्माताओं को सावधान किया गया है। दूसरी तस्वीर में एक चोटीधारी व्यक्ति, छालपत्रों पर पुरानी कलम से कुछ लिख रहा है। कालखंड और व्यक्ति की जातिगत पहचान, दोनों को ही समझना मुश्किल नहीं है। इस प्रकार 'ज्ञान' के सार्वभौम आधुनिक अर्थ को उलटते हुए उसे अध्यात्मिक-सामुदायिक जातिगत स्वरूप प्रदान कर दिया गया है। संलग्न और ऊपर उद्धृत सभी पंक्तियां- एक भी पंक्ति भूतकाल में नहीं है। शूरवीर ***'वो ही'*** कहलाते हैं जो धनुष बाण धारण करते हैं, ऋषि ***'हमेशा'*** ज्ञान बताते हैं और क्षत्रिय आज भी युद्ध में जाकर ***'दुश्मन को'*** मार भगाते हैं। (बल मेरा)

मैं यहां 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986' का उल्लेख करना चाहूंगा। ध्यातव्य है कि 1976 तक शिक्षा एवं पाठ्यचर्या के सभी अधिकार राज्य सरकारों के पास थे। 1976 के संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में लाया गया और 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्माण हुआ। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने राष्ट्रीय शिक्षा के मूल में एक सामान्य केंद्र (कॉमन कोर) और अन्य बातों में स्थानीय परिवेश के मुताबिक लचीलेपन की सिफारिश की। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा इसी परिप्रेक्ष्य में नियमित अंतराल पर होने वाली नियमित समीक्षा है। अतः इस कॉमन कोर का शिक्षा के लिए वही महत्व है जो भारतीय संविधान में प्रस्तावना का है। उद्धरण प्रस्तुत है, '' 'सामान्य केंद्र' में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, संवैधानिक जिम्मेदारियों तथा राष्ट्रीय अस्मिता से सम्बंधित अनिवार्य तत्त्व शामिल होंगे। ये मुद्दे किसी एक विषय का हिस्सा न होकर लगभग सभी विषयों में पिरोए जाएंगे। इनके द्वारा राष्ट्रीय मूल्यों को हर व्यक्ति की सोच और जिंदगी का हिस्सा बनाने की कोशिश की जाएगी। इन मूल्यों में ये बातें शामिल हैंः हमारी समान सांस्कृतिक धरोहर, लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, स्त्री-पुरुषों के बीच समानता, पर्यावरण का संरक्षण, सामाजिक समता, सीमित परिवार का महत्व और वैज्ञानिक तरीके के अमल की जरूरत। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि सभी शैक्षिक कार्यक्रम धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों के अनुरूप ही आयोजित हों। भारत ने विभिन्न देशों में शान्ति और आपसी भाईचारे के लिए सदा प्रयत्न किया है और 'वसुधैव कुटुम्बकम' के आदर्शों को संजोया है। इस परंपरा के अनुसार शिक्षा व्यवस्था का प्रयास यह होगा कि नई पीढी में विश्वव्यापी दृष्टिकोण सुदृढ़ हो तथा अंतरराष्ट्रीय सहयोग और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्त्व की भावना बढ़े। शिक्षा के इस पहलू की उपेक्षा नहीं की जा सकती।''

चित्र-4

ज्ञानी ज्ञ

इस लम्बे और महत्वपूर्ण उद्धरण को यहां रखने का उद्देश्य यह है कि जिस राष्ट्रीय मूल्य और सांझी सांस्कृतिक धरोहर को सिंचित करने का लक्ष्य हमारी शिक्षा नीति ने रखा, यह किताबें उसके ठीक उलट एकाश्मी, स्तरीकृत और पोंगापंथी समाज और उससे बने मूल्य हमारे सामने रख रही हैं। पहली कक्षा में शुरू हुआ 'क्षत्रिय युद्ध में जाते हैं' का दर्शन सातवीं कक्षा में परिणति को प्राप्त करता है - ''लव कुश में क्षत्रिय के सभी गुण विद्यमान थे।'' (हिन्दी, कक्षा-7, पृ. 4) इस प्रकार जातिगत पूर्वाग्रह जो हमारे समाज में मिथक की हैसियत रखते हैं, पाठ्यपुस्तकें उनसे टकराने की जगह उन्हें पुष्ट करने लगती हैं। प्रकारांतर से किसी को उनकी जन्मना पहचान के आधार पर कंजूस या कामचोर या गन्दा या बहुत दूर तक जाएं तो कट्टर तक घोषित किया जा सकता है। जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में सबसे जोर देकर कहा गया है, ''वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य है कि सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वाग्रह और कुंठाएं दूर हों।'' राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 में भी इस बात को बहुत स्पष्टता से कहा गया है, ''भारत विविध संस्कृतियों वाला समाज है जो अनेक प्रादेशिक व स्थानीय संस्कृतियों से मिलकर बना है। लोगों के धार्मिक विश्वास, जीवन शैली और सामाजिक संबंधों की समझ एक दूसरे से बहुत अलग हैं। सभी समुदायों को सह-अस्तित्त्व व समान रूप से समृद्ध होने का अधिकार है और शिक्षा व्यवस्था को भी हमारे समाज में निहित इस सांस्कृतिक विविधता के अनुरूप होना चाहिए।'' (1.4, पृष्ठ 8) अतः सरल शब्दों में कहा जाए तो शिक्षा में प्रतिनिधित्व का सवाल सामाजिक बराबरी का सवाल है।

किताब में सबसे पहले (पहले पाठ से भी पूर्व) दो पृष्ठ पर आठ कविताएं हैं। इनमें से तीन उदाहरण के लिए प्रस्तुत हैः 1. आंख में अंजन/दांत में मंजन/नितकर, नितकर, नितकर/कान में तिनका/नाक में उंगली/मतकर, मतकर, मतकर। 2. कोमल-कोमल सुन्दर होंठ/लगने न दो इन पर चोट/अब आई मंजन की बारी/दांतों को न लगे बीमारी। 3. बात सुनना ध्यान लगाकर/भैया दोनों कान लगाकर/साफ सफाई इनकी कर लो/आदत अच्छी मन में धर लो। इसके बरअक्स 'रिमझिम' की पहली कविता 'झूला' के तीन हिस्से देखें : (अ) अम्मा आज लगा दे झूला/इस झूले पर मैं झूलूंगा/इस पर चढ़कर ऊपर बढ़कर/आसमान को मैं छू लूंगा। (ब) झूला झूल रही है डाली/झूल रहा है पत्ता पत्ता/इस झूले पर बड़ा मजा है/चल दिल्ली, ले चल कलकत्ता। (स) झूल रही नीचे की धरती/उड़ चल, उड़ चल/उड़ चल, उड़ चल/बरस रहा है रिमझिम रिमझिम/उड़कर मैं लूटूं दल-बादल। पहला उदाहरण आदेशात्मक स्वर का है जिसमें सुनाई पड़ रहा स्वर बड़े/अभिभावक/अध्यापक का है जबकि दूसरे उदाहरण में बच्चे का अपना स्वर है और भाव उमंग भरे हैं। विडम्बना यह है कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या ने जिस सबसे क्रांतिकारी बदलाव की सिफारिश की थी, वह यही था- बाल केन्द्रित शिक्षा। बाल केन्द्रित शिक्षा का अर्थ है बच्चे के स्वर, उनके अनुभवों और इस प्रकार उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना। शिक्षाशास्त्र में अब यह मुकम्मल रूप से स्थापित हो चुका है कि बच्चों को उपदेश की खुराक नहीं सहभागिता की चुनौती चाहिए। यदि शिक्षा का अर्थ सिर्फ दिए हुए ज्ञान को अकाट्य सत्य मानकर पुनरुत्पादित करना ही होता तो पिछली पीढी का ज्ञान अगली पीढी की सीमा बन जाता। सवाल करना, संशोधन करना, विस्तार करना, खारिज करना ज्ञान के परवर्ती विकास के चरण हैं। यह हर प्लेटो के लिए एक अरस्तू की तलाश है। शिक्षा का अर्थ सूचनाओं के भण्डार को रटकर उगलना नहीं होता, शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी की तर्कशक्ति, अवधारणा निर्माण और कल्पना शक्ति का विकास है। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि प्रारम्भ से ही बच्चे की आवाज को जगह मिले और बच्चे को हौसला मिले कि नए गगन के नए सूर्य में 'मेरी भी आभा' है। जब इब्तिदा ही 'मतकर, मतकर' है तो आगे का हाल समझा जा सकता है, यह दृष्टिकोण आगे की सभी किताबों में समाया हुआ है। तीसरी कक्षा के पाठ 'शिष्टाचार' का नायक मगन 'कभी अपने माता-पिता की बात नहीं टालता।' और 'बड़ों की बात को कभी नहीं काटता।'।।'' (पृ. 9)। इस दृष्टिकोण की आलोचना राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में कुछ यों की गई है, ''हमारे स्कूल के शैक्षिक अभ्यास, सिखाने के कार्य और विद्यार्थियों के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तकें, उनके समाजीकरण और उनके सीखने में ग्रहणशीलता के गुण पर केन्द्रित होते हैं। जबकि हमें उनकी सक्रियता व रचनात्मक सामर्थ्य को पोषित और संवर्धित करना चाहिए- उनके दुनिया से वास्तविक तरीकों से संबंध बैठाने, दूसरों से जुड़ने की उनकी मूल अभिरुचि या अर्थ ढूंढने की जन्मजात रुचि, को पोषित करना चाहिए। सीखना अपने आपमें एक सक्रिय व सामाजिक गतिविधि है। प्रायः 'अच्छे विद्यार्थी' की जिस धारणा को प्रोत्साहित

किया जाता है उसमें अध्यापकों की आज्ञा का पालन, नैतिक चरित्र और अध्यापक के शब्दों को 'आधिकारिक ज्ञान' की तरह स्वीकारना शामिल है।'' (2.1, पृ. 15)

उपरोक्त कविताएं स्वच्छता की आदत बच्चों में विकसित करने के लिए जोड़ी गई हैं। यह राज्य द्वारा चलाए जा रहे स्वच्छता अभियान से प्रेरित हैं। यदि स्वच्छता पर केन्द्रित कुल रचनाओं को जोड़ा जाए तो यह कहा जा सकता है कि ये पाठ्यपुस्तकें स्वच्छता अभियान से प्रेरित नहीं वरन आक्रान्त हैं। पहली से आठवीं तक की किताबों में बारह पाठ पूर्णतः और पांच पाठ अंशतः स्वच्छता की शिक्षा के लिए जोड़े गए हैं। और वह तब, जब पर्यावरण अध्ययन की किताबें स्वच्छता के उपदेश से पहले ही भरी पड़ी हैं। यह आक्रान्तता, अध्येताओं के लिए हास्यास्पद और विद्यार्थियों के लिए त्रासद है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में समकालीन मुद्दों को जोड़ने के लिए नए विषय 'बना' दिए जाने की इस प्रवृत्ति पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा गया है, ''नए मुद्दों को विषयों की तरह जोड़ने से पाठ्यचर्या का बोझ और भी बढ़ता है और ज्ञान के अवांछनीय विखंडन को बढ़ावा मिलता है।'' (2.6, पृ. 34)। हुआ यही है, पाठ या तो विधिलिंग शैली में (आज्ञा या चाहिए अर्थ में) जोड़े गए हैं और जहां वे गल्प की शक्ल में आए हैं वहां भी उनका निस्तारण उपदेशपरकता में ही हुआ है। उदाहरण के लिए दूसरी कक्षा का पाठ 'बबलू बदल गया' का बबलू मां की डांट और गुरूजी के उपदेश मात्र से ही 'बदल जाता है।' (पृ. 81-83)। यहां शारीरिक चुनौती प्राप्त बच्चों या वंचित वर्गों/अस्मिताओं के प्रति इन किताबों का क्या रुख है, यह देखना भी दिलचस्प होगा। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के निर्देशों और जनाकांक्षाओं के दबाव के कारण अब पाठ्यपुस्तकों में इन विषयों पर पाठ होते हैं, यहां भी हैं, लेकिन देखना यह है कि उनकी दृष्टि क्या है। दूसरी कक्षा के पाठ 'सपना सच हो गया' में गुरूजी (अब तक आप यह समझ गए होंगे कि सभी किताबों के सभी पाठों में अध्यापक 'गुरूजी' हैं।) प्रभा के कृत्रिम टांग लगवाते हैं और फिर प्रभा बड़ी होकर डॉक्टर बनती है और 'अपने जैसे' लोगों के कृत्रिम टांग लगाकर 'समाज सेवा' करती है।' (पृ. 101-102)। इस तरह यह कहानी एक उपलब्धि की गाथा सुनाकर शारीरिक चुनौती प्राप्त अनेक बच्चों के मन में विकलांगता की रिक्ति को और गहरा करती है। कक्षा छह में पद्मा राव की एक अच्छी कहानी एक ऐसी ही बच्ची के दोस्तों के साथ संबंधों की कथा कहती है लेकिन पाठ्यपुस्तक निर्माताओं ने प्रश्न खंड में पूरे संदेश का गुड गोबर कर दिया है। लिखा है, ''हमारे आस पास या परिवार में ऐसे लोग होते हैं जो अपने दैनिक कार्यों को करने में असुविधा महसूस करते हैं। उन्हें विशेष सहायता की आवश्यकता होती है। हमें कोशिश करनी चाहिए कि हम ऐसे व्यक्तियों की सहायता करें उन्हें उनकी निशक्तता का अहसास नहीं कराएं बल्कि उनके साथ मित्रवत तथा सम्मानपूर्वक व्यवहार करें।'' (पृ. 29)। दरअसल बहुत भली लग रही ये पंक्तियां उन बच्चों/व्यक्तियों - जिन्हें प्रकृति ने चुनौती दी है और वो इस चुनौती का सामना कर समाज में अपना वाजिब स्थान बना रहे हैं, उनकी इस क्षमता को रेखांकित करने की बजाय उनकी असहायता को दर्शा रही हैं और इस तरह उनके लिए 'दयाभाव' की सृष्टि कर रही हैं जो कतई अवांछित है। कक्षा सात का पाठ 'ये भी धरती के बेटे हैं' तस्कर, भिखारी, जेबकतरे के रूप में तीन बच्चों को दिखाता है जो अनाथ हैं और काम न मिलने के कारण 'भटक गए' हैं। फिर जिन पिता-पुत्र से उनका संवाद होता है, वे उन्हें अपने घर ले जाते हैं और काम देते हैं (पृ. 52-55)। इस पाठ के लेखक से पूछने की इच्छा होती है कि क्या जरूरी है कि हर कहानी का कोई 'समाधान' दिखाया ही जाए, और वो भी इतना सरलीकृत कि उसकी व्यर्थता सातवीं का बच्चा भी समझ लेगा। सातवीं कक्षा का ही पाठ 'भारत की मनस्विनी महिलाएं' किस तरह से स्त्री की द्वितीयक भूमिका को पुष्टपोषित करता है, इसे देवयानी भारद्वाज ने अपने लेख में सोदाहरण दिखाया है। इन सभी उदाहरणों के जरिए जो कहना है वह यह कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के निर्देश, समावेशी शिक्षा का पालन ये किताबें तकनीकी रूप से भले कर लें, पर यह समावेशी शिक्षा नहीं है क्योंकि यह व्यवहार में उन्हें और हाशिए पर धकेल रही है।

पुनः संदर्भित किताब पर लौटें। इसमें देशप्रेम की एक कविता है 'देश की सेवा'। कविता इस तरह से है - कौन करेगा देश की सेवा/हम भाई हम/कौन चलेगा सच्चा रास्ता/हम भाई हम/कौन बोलेगा मीठी भाषा/हम भाई हम/कौन बनेगा अच्छा बच्चा/हम भाई हम। इसमें लयबद्धता नहीं है तो उसका तो गम नहीं है, वह तो देशभक्ति पर कुर्बान हो ही

सकती है और 'अच्छा बच्चा' एक भविष्यत काल का लक्ष्य बताकर देशसेवा को उसकी प्राथमिक कसौटी बता दिया गया है तो उसकी भी उपेक्षा की जा सकती है क्योंकि हमें देशसेवा से लेखक की मुराद फिलहाल मालूम नहीं है। मैं इसके साथ संलग्न दोनों चित्र आपको दिखाना चाहता हूं। उससे देशसेवा का थोडा अर्थ खुल सकता है। (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 72) पहला चित्र (चित्र-5) शीर्षक के साथ है 'जय जवान जय किसान'। शीर्षक के अनुरूप इसमें दोनों दिख रहे हैं पर तस्वीर में सैनिक की केन्द्रीय स्थिति लग रही है और बच्चे, शिक्षक और किसान तीनों उसका अभिवादन करते दिख रहे हैं। दूसरा चित्र (चित्र-6) मंतव्य को अधिक स्पष्ट करता है। उसमें कुछ बच्चे सैनिक की वेशभूषा में परेड करते दिख रहे हैं। सभी बच्चे लड़के हैं। (यहां प्रसंगांतर होगा पर बताना जरूरी है कि आठवीं कक्षा की किताब में, पृष्ठ 95 पर स्वच्छता की प्रतिज्ञा लेते बच्चों की तस्वीर छपी है और संयोग है कि उसमें सभी लडकियां हैं, कुछ के हाथ में झाडू भी है।) बेशक सेना पर सारे देशवासियों को गर्व होना चाहिए लेकिन पहली कक्षा के बच्चों को देशप्रेम/देशसेवा का अर्थ सैनिक बनने से जोड़कर दिखाना यह दिखाता है कि इसके संकलक-निर्माता सैन्य राष्ट्रवाद से ग्रस्त हैं। बहुत संभव है कि अब तक इस लेख से सहमत होता आ रहा पाठक भी यहां कहे कि मैं अतिवाद से ग्रस्त हूं क्योंकि आज यह कहना कि सीमाओं की रक्षा करने और सैनिकों की जय जयकार करने के अलावा भी देशप्रेम के अनेक रूप हैं, यह कहना भी आज देशद्रोह की श्रेणी में आ सकता है। लेकिन सच यही है कि सीमाओं पर तनाव स्थाई सत्य नहीं है और देश का बहुलांश जो सेना में नहीं है, उसका देशप्रेम संदिग्ध या कम नहीं है। इससे भी ज्यादा प्रासंगिक यह है कि बच्चे सेना में नहीं जाते। उन्हें देशप्रेम के वे रूप बताए जाने चाहिए जो उनके आस-पास और उनकी पहुंच में हैं। उनका वर्तमान सिर्फ भविष्य की पूर्वपीठिका नहीं है, उनका वर्तमान सबसे बड़ा सच है। ''बच्चे का 'भविष्य' अब इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि उसके 'वर्तमान' को अनदेखा किया जा रहा है, जो बच्चे, समाज व राष्ट्र के लिए अहितकर है।'' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपेरखा 2005: परिचय, पृ. 2)

चित्र-5

जय जवान—जय किसान

चित्र-6

आगे की कक्षाओं में जो मिथकीय-पौराणिक और सामंती परिवेश की कथाएं आदर्श के रूप में प्रस्तुत की गई हैं, उनका विश्लेषण यहां स्थानाभाव के कारण नहीं किया जा रहा है किन्तु उनके बीज पहली ही कक्षा में हैं, यह स्पष्ट है। दरअसल जो सबसे बड़ा नुकसान ये किताब करती है, उसे न तो अधिकार हनन के दायरे में स्पष्टता से रखकर कोई वाद दाखिल किया जा सकता है, न किसी समुदाय की भावनाओं को उससे ठेस पहुंचती है कि जन दबाव उसे वापिस लेने के लिए आंदोलन करे। जो सबसे गहरा और दूरगामी नुकसान है, वह यह कि यह किताब ठस और उबाऊ है। यह बच्चे की शुरुआती उमंगों पर तुषारापात कर सकती है और भाषा एवं रचनात्मकता से उसकी स्थाई दूरी बना सकती है। मैंने लेख की शुरुआत वर्णमाला के लिए लिखी कुछ कविताओं के विश्लेषण से की थी। वे कविताएं, जो स्पष्टतया आपत्तिजनक नहीं हैं, वे भी लयहीन, असंगत और अतार्किकता से भरी हैं। 'चरखा देखो घूम रहा/कितना धागा बुन रहा' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 15) जैसी बेसुरी, 'षटकोण यह कहलाता है/सबके मन को भाता है' (हिन्दी, कक्षा-1, पृ. 73) जैसी बेतुकी कविताएं किसी भी बच्चे को हमेशा के लिए इस पठन-पाठन से दूर कर सकती है। मशहूर शिक्षाविद प्रो. कृष्ण कुमार हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों के अपने एक विश्लेषण में लिखते हैं, ''पहली ही कक्षा में इस प्रक्रिया का आरम्भ हो जाना महत्वपूर्ण है और स्थापित परिपाटी की दृष्टि से तर्कसंगत भी। पहली कक्षा बच्चे को साक्षर बनाती है, उनकी नवजात साक्षरता का उपयोग सीधे-सीधे ऐसे कथानकों में करना पाठ्यपुस्तक का उद्देश्य है जो उनकी स्वतंत्र अर्थ खोज को पहले से नियत अर्थों की पहचान करने की दिशा में मोड़ दें। इसे हम साक्षरता का समाजीकरण करने वाला पक्ष भी कह सकते हैं और रसिकता की हत्या करने वाला पक्ष भी। सच तो ये है कि हिन्दी की पहली किताब बच्चे को साक्षर इस तरह बनाती है कि अर्थग्रहण की उसकी स्वाभाविक इच्छा कुंद हो जाए।'' (कृष्ण कुमार, 'पाठ्यपुस्तकों की हिन्दी', शैक्षिक संदर्भ, अंक 45, पृ. 83)। तो यह बचपन की रचनात्मकता की हत्या है। यह भावी पंक्तिबद्ध अुयायी गढ़ने की शुरुआत है, इसके खिलाफ कौनसा वाद दाखिल किया जाए? राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005 विचारधारा की बहसों से ऊपर उठकर शिक्षण पद्धति में कुछ मूलभूत परिवर्तनों की बयार लाई थी, लेकिन हम लौटकर फिर वहीं आ गए।

उपसंहारः मेरी एक दोस्त जो अपने बागी तेवरों के लिए 'कुख्यात' थीं, मैंने उनके निर्माण के बारे में बात की। उन्होंने इसका श्रेय अपने स्कूल को दिया। मैंने आगे, उम्मीद के साथ, जानना चाहा तो उन्होंने मुस्कुराकर तीन शब्द में बात समझा दी, 'टू मच रेजिमेंटेशन!' मुझे आज की पीढ़ी के बारे में भी यही लगता है। उसे आप आज फीका, एकांगी और पूर्वाग्रह ग्रस्त ज्ञान घुट्टी में पिलाना चाहेंगे तो वह आपके झांसे में नहीं आएगी क्योंकि वह खुद आज है। ◆

संदर्भ

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005; दस्तावेज इस वेब पते पर उपलब्ध हैं: http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/framework/ncf_hindi_2005/ncf2005.pdf

भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र; दस्तावेज इस वेब पते पर उपलब्ध हैः http://www.eklavya.in/pdfs/Sandarbh/Sandarbh_45/75-87_Hindi_in_Text_books.pdf

POSITION PAPER, NATIONAL FOCUS GROUP ON GENDER ISSUES IN EDUCATION; दस्तावेज इस वेब पते पर उपलब्ध हैं: http://www.ncert.nic.in/new_ncert/ncert/rightside/links/pdf/focus_group/gender_issues_in_education.pdf

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986; दस्तावेज इस एक वेब पते पर उपलब्ध हैं: http://www.ncert.nic.in/oth_anoun/national_policy_hindi.pdf

पाठ्यपुस्तकों की हिन्दी, कृष्ण कुमार, शैक्षिक संदर्भ, अंक 45, पृ. 83; लेख इस वेब पते पर उपलब्ध हैः http://www.ncert.nic.in/rightside/links/pdf/h_focus_group/Bhartiya%20Bhasaon%20Ka%20Sikshan.pdf

लेखक परिचयः पिछले 17 वर्षों से कॉलेज शिक्षा में साहित्य के प्राध्यापक हैं और जुलाई-दिसम्बर, 2005 में प्रकाशित 'शिक्षा विमर्श' के 'बाल साहित्य विशेषांक' के अतिथि संपादक भी रहे हैं।